अनंत देब सिंह महापात्रा व अन्य

बनाम

पश्चिम बंगाल राज्य

6 जून, 2007

[डॉ. अरिजीत पसायत और डी. के. जैन, जे. जे.,]

दंड संहिता, 1860

धारा 96, 97, 99, 100 और 101-अपराध के लिए अपवाद-निजी प्रतिरक्षा का अधिकार - सीमा और क्षेत्र - हमले के शिकार की मृत्यु-अभियुक्त अंतर्गत धारा को दोषी ठहराया गया। 304 (भाग II)/149 और 323/149, निजी प्रतिरक्षा के अधिकार का दावा करते हुए-निर्णीत तथ्यों पर, अभियुक्त द्वारा हमले के परिणामस्वरूप, जब पीड़ित गिर गया और अभियुक्त पर हमला करने वाला कोई नहीं था, और तब भी वे उस पर हमला करते रहे, और आवश्यक से अधिक नुकसान पहुँचाया, तो उन्हें न्यायालयों द्वारा पीड़ित की मृत्यु का दोषी सही पाया गया-साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा 105

साक्ष्य अधिनियम, 1872:

धारा 105 - निजी बचाव की याचिका - सबूत का भार - निर्णित अभियुक्त पर यह साबित करने का भार है कि उसे निजी प्रतिरक्षा का अधिकार था जो मृत्यु कारित करने तक था।

सबूत के अभाव में, अदालत के लिए आत्मरक्षा की याचिका की सच्चाई का अनुमान लगाना संभव नहीं है-अदालत ऐसी परिस्थितियों के अभाव की उपधारणा करेगी, प्रासंगिक कारकों पर विचार किया जाना चाहिए-समझाया गया-दंड संहिता, 1860-धारा 304 (भाग-II)/149

अपीलार्थीयों पर अन्य बातों के साथ-साथ दंडनीय अपराधों अंतर्गत धारा 304 के लिए मुकदमा चलाया गया था

धारा 304 (भाग-II)/149, आई. पी. सी. अभियोजन पक्ष का मामला यह था कि अपीलकर्ताओं ने 15 अन्य लोगों के साथ पी. डब्ल्यू. 2 परिवादी के खेतों से धान काटना शुरू कर दिया और जब उसके पिता ने विरोध किया तो उन्होंने उस पर हमला किया और उसकी उंगलियां भी काट दीं। उसके द्वारा शोर मचाने पर पीडब्लू 2 और उसकी माँ पीडब्लू 4 वहाँ पहुँच गए, लेकिन अभियुक्तों ने उन पर हमला भी किया। पीड़ित ने अगले दिन दम तोड़ दिया। विचारण न्यायालय ने पांच लोगों को आरोपित अपराधों में दोषी पाया। उनमें से चार को धारा 304 (भाग-II)/149 के अंतर्गत दोषी ठहराया

गया, इन चार में से दो को अतिरिक्त रूप से अंतर्गत धारा 323/149 में दोषी ठहराया गया था। जबकि पाँचवें को अंतर्गत धारा 323/149 आईपीसी में दोषी ठहराया गया था। उच्च न्यायालय के समक्ष दायर अपील में, अभियुक्त का प्राथमिक तर्क यह था कि प्राथमिकी में हेरफेर किया गया था और वह पूर्व दिनांकित थी और यह एक छेड़छाड़ किया हुआ दस्तावेज था।

निजी बचाव के अधिकार की याचिका भी उठाई गई थी। उच्च न्यायालय की दोनों याचिकाओं को अस्वीकार करने के बाद, तीन अभियुक्तों ने हस्तगत अपील दायर की।

आंशिक रूप से अपील की अनुमति देते हुए, न्यायालय ने तय किया;

1. जहाँ तक एफ. आई. आर. से संबंधित याचिका का संबंध है, यह देखा जा सकता है। कि उच्च न्यायालय ने पीडब्लू-16 और पीडब्लू-4 के साक्ष्य का उल्लेख किया है और सही निष्कर्ष निकाला है कि इससे संबंधित याचिका में कोई सार नहीं था कि एफ. आई. आर. में हेरफेर की गई हो। (पैरा 8), (978-सी)

2.1. निजी प्रतिरक्षा के अधिकार का दावा करना जहां स्वेच्छा से मृत्यु कारित की गई हो, अभियुक्त को यह दिखाना चाहिए कि ऐसी परिस्थितियाँ थीं जो इस आशंका के लिए उचित आधारों को जन्म देती थीं कि उसे या तो मृत्यु या गंभीर चोट लगेगी। अभियुक्त पर यह दिखाने का भार है कि उसे निजी बचाव का अधिकार था जो मृत्यु कारित करने तक

था। आई. पी. सी. की धारा 100 और 101 निजी प्रतिरक्षा के अधिकार की सीमा और क्षेत्र को परिभाषित करती है। (पैरा 12), (981-ए, बी)

जय देव बनाम पंजाब राज्य, ए. आई. आर. (1963) एस. सी. 612, पर निर्भर था।

2.2. साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 105 के तहत, प्रमाण का भार अभियुक्त पर है, जो आत्मरक्षा की याचिका स्थापित करता है, और सबूत के अभाव में, न्यायालय के लिए आत्मरक्षा की याचिका की सच्चाई की उपधारणा करना संभव नहीं है। न्यायालय ऐसी परिस्थितियों की अनुपस्थिति की उपधारणा करेगी। यह अभियुक्त के लिए है कि वह या तो स्वयं सकारात्मक साक्ष्य प्रस्तुत करके या अभियोजन पक्ष के लिए जांचे गए गवाहों से आवश्यक तथ्यों को प्राप्त करके आवश्यक सामग्री को अभिलेख पर रखे। यह पता लगाने के लिए कि निजी बचाव का अधिकार उपलब्ध है या नहीं, अभियुक्त को लगी चोटें, उसकी सुरक्षा के लिए खतरे की निकटता, अभियुक्त द्‌वारा कारित की गई चोटें और क्या अभियुक्त के पास सार्वजनिक अधिकारियों का सहारा लेने का समय था, ये सभी प्रासंगिक कारक हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए। (979 - बी, सीः 981-डी, ई) (पैरा 10 और 14)

सलीम जिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ए. आई. आर. (1979) एस. सी. 391 मुंशी राम और अन्य बनाम दिल्ली प्रशासन ए. आई. आर. (1968) एस. सी. 702: गुजरात राज्य बनाम बाई फातिमा, ए.आई.आर. (1975) एससी 1478: यू. पी. राज्य बनाम मोहम्मद मुशीर खान, ए.आई.आर. (1977) एससी 2226: मोहिंदर पाल जॉली बनाम पंजाब राज्य, ए. आई. आर. (1979) एस. सी. 57: लक्ष्मी सिंह बनाम बिहार राज्य, ए. आई. आर. (1976) एस. सी. 2263: बीरन सिंह बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. (1975) एससी 87 और सेकर उर्फ राजा शेखरन बनाम राज्य द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया।

पुलिस निरीक्षक, तमिलनाडु, (2002) 7 सर्वोच्च न्यायालय 124, पर भरोसा किया

2.3. हस्तगत मामले में, उच्च न्यायालय ने अभिलिखित किया कि पीड़ित लाठी लगने के बाद धान के खेत में गिर गया था तथा पी. डब्ल्यू.-2 अपनी जान बचाने के लिए एक सुरक्षित स्थान पर चला गया और अपीलकर्ताओं पर हमला करने वाला कोई नहीं था। इस तथ्य के बावजूद, अपीलकर्ता पीड़ित पर हमला करते रहे और उस प्रक्रिया में निजी बचाव के अधिकार को पार करने के लिए उसे आवश्यक से अधिक नुकसान पहुंचाया। इस प्रकार, अपीलार्थी पीड़ित की मृत्यु के लिए दोषी थे। इसलिए, उच्च न्यायालय ने निजी बचाव के अधिकार के प्रयोग से संबंधित याचिका को

सही ढंग से खारिज कर दिया है। (पैरा 9 और 14) (978-एफ, जीः 981-एफ. आई.

2.4. सजा के संबंध में, 8 साल की सजा सुनाई गई है।

धारा 304 (पैरा 2) के अधीन दंडनीय अपराध। यह घटना 1990 की है। इस तथ्य और घटना की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए, 6 साल की हिरासत की सजा न्याय के उद्देश्यों को पूरा करेगी। जहाँ तक अपीलार्थी सं. 3 संबंधित है, तो दोषसिद्धि धारा 149 के साथ पठित धारा 323 के संदर्भ में है और सजा 6 महीने की है। अभिलेख से ऐसा प्रतीत होता है कि वह पहले ही लगभग 5 महीने की अभिरक्षा का भुगत चुका है। इसे ध्यान में रखते हुए, सजा को घटाकर पहले से गुजर चुकी अवधि कर दिया जाता है।

(पैरा 15 और 16) (981-जी 982-ए)

आपराधिक अपील न्यायनिर्णयः आपराधिक अपील सं. 828/2007

उच्च न्यायालय के 28.11.2006 दिनांकित निर्णय और आदेश से 1998 के सी. आर. ए. सं. 370 कलकत्ता से उत्पन्न

अपीलार्थियों की ओर से; रुखसाना चौधरी।

प्रत्यर्थी की ओर से; तारा चंद्र शर्मा और राजीव शर्मा।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधीश डॉ. अरिजीत पासायत, द्वारा दिया गया था।

1. स्वीकृति दी गई।

2. इस अपील में चुनौती कलकत्ता उच्च न्यायालय खंडपीठ के फैसले के लिए है। भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'आई. पी. सी.') की धारा 149 के साथ पठित धारा 304 भाग 2 के तहत दंडनीय अपराध के लिए उनकी दोषसिद्धि पर सवाल उठाते हुए अपीलकर्ताओं द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया। उच्च न्यायालय के समक्ष 1 से 4 तक के अपीलार्थियों को 8 साल के लिए कठोर कारावास भुगतने और व्यतिक्रम की शर्त के साथ प्रत्येक को 1,000/- रुपये का जुर्माना देने की सजा सुनाई गई थी। उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता 1,2 और 5 को भी इसके तहत दोषी ठहराया गया था। धारा 323 सपठित धारा 149 के अंतर्गत 6 माह का कारावास और व्यतिक्रम शर्त के साथ प्रत्येक पर 200/ - रूपये का जुर्माना की सजा सुनाई। उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी 1,2 और 5 इस अपील में क्रमशः 1,2 और 3 अपीलार्थी हैं।

3. संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि दिनांक 13.9.1990 को दोपहर लगभग 2:30 पी. एम. के करीब अपीलार्थियों के साथ एफ. आई. आर. में नामित 15 अन्य लोगों ने परिवादी निरंज सिंह महापात्रा पी.डब्ल्यू. 2 जमीन प्लॉट संख्या 122/470 गाँव दक्षिण बैद प्रदर्श पी 5 खटरा में स्थित

धान को काटना शुरू कर दिया। यह देखकर मधुसूदन सिंह महापात्रा वहां पहुंचे और विरोध किया, जिस पर अभियुक्तगण व्यक्तियों ने मृतक के सिर पर लाठियों से हमला किया और धारदार दरांती से मृतक के हाथ की उंगलियों को काट दिया। मृतक की आवाज सुनकर पीडब्लू 2 और उसकी माँ मनोरमा सिंघा महापात्रा (पीडब्लू 4) वहाँ पहुँचे, लेकिन अभियुक्त व्यक्तियों ने पीडब्लू 2 और पीडब्लू 4 पर भी हमला किया और उनकी उपस्थिति में मृतक मधुसूदन सिंघा महापात्रा के सिर पर दरांती से और वार किए। मधुसूदन सिंह महापात्रा जमीन पर गिर गया और उसके बाद, पीडब्लू 2 अन्य गाँवों की मदद से अपने पिता और माँ को पुलिस स्टेशन ले आया। ड्यूटी पर तैनात पुलिस अधिकारी ने उन्हें खटरा अस्पताल जाने के लिए कहा और निर्देश के अनुसार वे खटरा पीएचसी आ गए। प्राथमिक उपचार के बाद उक्त पीएचसी के डॉक्टर ने सभी घायल व्यक्तियों को बांकुरा मेडिकल कॉलेज और अस्पताल भेज दिया जहां पीडब्लू 2 के माता-पिता को भर्ती कराया गया और पीडब्लू 2 को प्राथमिक उपचार के बाद छुट्टी दे दी गई। पी. डब्ल्यू. 2 ने लिखित शिकायत एफ. आई. आर. प्रदर्श 2 अपने बहनोई द्विजपद (पी. डब्ल्यू. 5) के माध्यम से खटरा पुलिस स्टेशन भेजी और उक्त लिखित शिकायत के आधार पर खटरा पी. एस. प्रकरण संख्या 40 दिनांक 13.09.1990 आई. पी. सी. की धारा 147/148/149 48/324/325 379 के तहत अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध अनुसंधान प्रारंभ किया। मजरूब मधुसूदन सिंह महापात्रा को आई चोटो के

कारण दिनांक 14.9.90 को उसने दम तोड़ दिया, जिसके पश्चात आई. पी. सी. की धारा 304 को जोड़ा गया और अनुसंधान अधिकारी जाँच अधिकारी (संक्षेप में आई. ओ.) ने जांच पूर्ण करने के पश्चात् अभियुक्तगण के विरूद्ध आई. पी. सी. की धारा 147/148/149/48/324/325/379 और 304 के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया। इसके बाद विचारण के पश्चात् अभियुक्तगण की दोषसिद्धि व सजा उपरोक्त वर्णित अनुसार होने के पश्चात् विचारण समाप्त हुआ।

5. उच्च न्यायालय के समक्ष प्राथमिक तर्क यह था कि एफ. आई. आर. में हेरफेर की गई थी तथा वह पूर्व दिनांक की थी और एक छेडछाड किया गया दस्तावेज था। इस संबंध में पीडब्लू-2 की साक्ष्य का संदर्भ दिया गया था। यह भी तर्क दिया गया कि अभियुक्त व्यक्ति पूर्वाग्रह से ग्रस्त थे क्योंकि मामले और उसके जवाबी मामले की सुनवाई एक ही अदालत द्वारा नहीं की गई थी। निजी बचाव के अधिकार की याचिका को भी उठाया गया।

दूसरी ओर राज्य के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि एफ. आई. आर. में हेरफेर नहीं किया गया था और निजी बचाव का अधिकार भी उपलब्ध नहीं था।

6. उच्च न्यायालय ने विस्तृत रूप से साक्ष्य का विश्लेषण किया और फैसला सुनाया कि निचली अदालत के निष्कर्ष अपरिवर्तनीय थे।

7. अपील के समर्थन में पक्षों के विद्वान वकील ने उच्च न्यायालय के समक्ष किए गए तर्कों को दोहराया। अपीलार्थी के विद्वान वकील ने यह भी कहा कि निचली अदालत और उच्च न्यायालय द्वारा दी गई सजा स्पष्ट रूप से कठोर है।

8. जहाँ तक एफ. आई. आर. से संबंधित याचिका का संबंध है, यह देखा जा सकता है कि उच्च न्यायालय ने पीडब्लू-16 और पीडब्लू-4 की साक्ष्य का संदर्भ करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि प्राथमिकी में हेरफेर से संबंधित याचिका में कोई सार नहीं था। उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में उल्लेख किया:

> ”औपचारिक एफ. आई. आर. (प्रदर्श 7) यह दर्शाता है कि मूल लिखित शिकायत/एफ. आई. आर. 13.9.90 को शाम 4.05 पी.एम. पर प्राप्त हुई थी और पुलिस अधिकारी ने प्रदर्श 7 में इस प्रभाव का अंकन किया था कि मूल लिखित शिकायत के साथ ही संलग्न थी उस पर पुलिस का अंकन दूसरे पृष्ठ या मूल एफआईआर के दूसरे पृष्ठ पर स्वंय के हस्ताक्षर और दिनांक 13.09.90 का था जो यह दर्शाता है कि उसने दिनांक 13.09.90 को 04.05 पी.एम. पर उसे प्राप्त कर लिया था और मुकदमा संख्या 40 थाना खटरा दिनांकित 13.09.90 शुरू कर दिया और उक्त अंकित

मूल लिखित शिकायत प्रदर्श 2 है, मूल लिखित शिकायत प्रदर्श 2 बंगाली में लिखी गई थी और उसमें बंगाली अंक '14' को बदलकर '13' कर दिया गया था। मूल शिकायत में बंगाली में तारीख के संबंध में यह अधिलेखन यह स्थापित नहीं कर सकती है कि एफआईआर पूर्व-दिनांकित, समय-पूर्व और मनगढ़ंत थी।"

9. निजी बचाव के अधिकार से संबंधित याचिका पर आते हुए उच्च न्यायालय यह उल्लेख किया कि मधुसन लाठी लगने के बाद धान के खेत में गिर गया और पीडब्लू-2 अपनी जान बचाने के लिए एक सुरक्षित स्थान पर चला गया और अपीलकर्ताओं पर हमला करने वाला कोई नहीं था। इस तथ्य के बावजूद, अपीलकर्ताओं ने मृतक पर हमला करना जारी रखा और उस प्रक्रिया में मृतक को निजी बचाव के अधिकार से अधिक नुकसान पहुंचाया। इस प्रकार अपीलार्थी मधुसूदन की मृत्यु के लिए दोषी थे।

10. आई. पी. सी. की धारा 96 में प्रावधान है कि ऐसे कुछ निजी प्रतिरक्षा के अधिकार प्रयोग में किये जाते है अपराध नहीं है। यह धारा निजी प्रतिरक्षा का अधिकार अभियुक्त को परिभाषित नहीं करता है, यह केवल मात्र इंगित करता है कि ऐसे अपराध जो उक्त अधिकार के प्रयोग में किये जाते है वे अपराध नहीं है। परिस्थितियों के विशेष समूह में किस व्यक्ति ने निजी प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग करते हुए कुछ कार्य किया

है, यह तथ्य का प्रश्न है जिसके प्रत्येक मामले के तथ्यों व परिस्थितियों में निर्धारित किया जाना है। इस तरह के प्रश्न के निर्धारण के लिए परीक्षण अमूर्त रूप से शरीर पर नहीं किया जा सकता, तथ्यों के इस प्रश्न को निर्धारित करने पर न्यायालय को प्रवेश के सभी तथ्यों पर विचार करना चाहिए। अभियुक्त के लिए इस विषय का अभिवचन कई शब्दों में करना आवश्यक नहीं है कि उसने आत्मरक्षा में काम किया। यदि परिस्थितियों से ऐसा दर्शित हो कि निजी बचाव का अधिकार विधिक रूप से प्रयोग किया गया था। न्यायालय इस प्रकार के विचार करने में स्वतंत्र है। किसी भी मामले में न्यायालय इस तथ्य पर विचार कर सकती है भले ही अभियुक्त ने उक्त याचिका का प्रयोग नहीं किया हो। यदि अभिलेख पर अपराध सामग्री से यह दर्शित हो। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 105 में सबूत का भार उस अभियुक्त पर है जो आत्मरक्षा की याचिका स्थापित करता है और सबूत के अभाव में न्यायालय के लिए आत्मरक्षा की याचिका की सत्यता की उपधारणा करना संभव नहीं है। न्यायालय ऐसी परिस्थितियों का अभाव होने की उपधारणा करना अभियुक्त के लिए है कि वह या तो स्वंय सकारात्मक साक्ष्य प्रस्तुत करें या अभियोजन पक्ष द्वारा जांचे गये गवाहों से आवश्यक तथ्य प्राप्त कर आवश्यक सामग्री को अभिलेख पर रखे। निजी बचाव के अधिकार पर याचिका लाने वाले अभियुक्त को साक्ष्य तलब करने की आवश्यक नहीं है, वह अपनी याचिका को उन परिस्थितियों के संदर्भ में स्थापित कर सकता है जो अभियोजन

पक्ष से उत्पन्न हुआ हो। ऐसे मामलो में प्रश्न अभियोजन पक्ष की साक्ष्य के सही प्रभाव के आंकलन का प्रश्न होगा, ना कि अभियुक्त द्वारा किसी पक्ष के निर्वहन का प्रश्न। जहां निजी बचाव के अधिकार का अनुरोध किया जाता है वहां बचाव पक्ष एक उचित व संभावित संस्करण होना चाहिए जो न्यायालय को संतुष्ट करता हो कि अभियुक्त द्वारा किया गया नुकसान या तो उस पर हुए हमले को देखने के लिए या अभियुक्त की ओर से आगे की अचित आशंका को देखने के लिए आवश्यक थी। आत्मरक्षा की याचिका को स्थापित करने का भार अभियुक्त पर है और उक्त भार की संभावनाओं की प्रधानता देखने से निर्वहन किया जा सकता है, जिस आधार पर अभिलेख पर सामग्री उस याचिका का पक्ष रखती हो। (मुंशी राम और अन्य बनाम दिल्ली प्रशासन, ए.आई.आर. (1968) एससी 702, गुजरात राज्य बनाम बाई फातिमा, ए.आई.आर. (1975) एससी 1478, यू. पी. राज्य बनाम मोहम्मद मुशीर खान, ए.आई.आर. (1977) एससी 2226 और मोहिंदर पाल जॉली बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. (1979) एससी 577 देखें) धारा 100 से 101 आईपीसी शरीर की निजी प्रतिरक्षा के अधिकार की सीमा को परिभाषित करती है। यदि किसी व्यक्ति को धारा 97 में शरीर की निजी प्रतिरक्षा का अधिकार है तथा वह अधिकार धारा 100 के तहत यदि उचित आशंका है तो मृत्यु या गंभीर चोट हमले का परिणाम होगी तथा मृत्यु कारित करने तक का है। सलीम जिया बनाम उत्तर प्रदेश

राज्य, ए. आई. आर. (1979) एस. सी. 391 में इस न्यायालय के अवलोकन को उद्धृत किया गया है जो इस प्रकार हैः

> "यह सच है कि एक आरोपी व्यक्ति पर आत्मरक्षा की दलील स्थापित करने का बोझ उतना दुर्भर नहीं है जितना कि अभियोजन पक्ष पर है और जबकि अभियोजन पक्ष को अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित करने की आवश्यकता होती है, आरोपी को इसकी आवश्यकता होती है दलील को पूरी तरह से स्थापित न करें और अभियोजन पक्ष के गवाहों की जिरह में उस दलील के लिए आधार बनाकर या बचाव साक्ष्य जोड़कर संभावनाओं की मात्र प्रबलता स्थापित करके अपने दायित्व का निर्वहन कर सकते हैं।"

11. अभियुक्त को निजी प्रतिरक्षा के अधिकार अस्तित्व को संदेह से परे साबित करने की आवश्यकता नहीं है। उसके लिए केवल मात्र दीवानी मामले की तरह मामले की संभावनाओं की प्रधानता उसकी याचिका के पक्ष में है।

12. चोटों की संख्या हमेशा निर्धारित करने के लिए एक सुरक्षित मानदंड नहीं है कि हमलावर कौन था। यह एक सार्वभौमिक नियम के रूप में नहीं कहा जा सकता है कि जब भी अभियुक्त व्यक्तियों के शरीर पर चोटें हैं तो यह अनिवार्य रूप से उठाया जाना चाहिए कि अभियुक्त

व्यक्तियों ने अपने निजी प्रतिरक्षा के अधिकार में चोट पहुंचाई थीं। बचाव पक्ष को आगे यह स्थापित करना होगा कि अभियुक्त संभाव्यताओं पर इस प्रकार की चोटों के अधिकार उसके विवरण के अनुसार अभियुक्त द्वारा लगी चोटे पर स्पष्टीकरण नहीं देना घटना के संबंध या विवाद के दौरान एक महत्वपूर्ण परिस्थिति है, परन्तु अभियोजन केवल मात्र चोटो का स्पष्टीकरण नहीं देना सभी अभियोजन मामलों को प्रभावित नहीं करता है। यह सिद्धांत ऐसे मामलों पर भी लागू होता है जहां अभियुक्त को केवल मात्र मामूली एवं सतही चोटें लगी हों या जहाँ साक्ष्य इतना स्पष्ट और ठोस है कि इतना स्वतंत्र और उदासीन है, इतना संभावित, सुसंगत और श्रेय-योग्य हो कि यह इसके प्रभाव से कहीं अधिक है, अभियोजन पक्ष की ओर से चोटों की व्याख्या करने के चोट के प्रभाव से कहीं अधिक है। लक्ष्मी सिंह बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. (1976) एससी 2263, इस मामले में, जैसे कि निचली अदालतों ने पाया कि अभियुक्तगण पर एक भी चोट नहीं आई थी। जबकि पीडब्लू 2 को बड़ी संख्या में चोटें आईं और उसें अस्पताल में भर्ती कराया गया था। निजी प्रतिरक्षा का अधिकार अनुमानों और अटकलों पर आधारित नहीं हो सकती। इस बात पर विचार करते हुए कि क्या अभियुक्त के पास निजी प्रतिरक्षा का उपलब्ध है या नहीं, यह प्रासंगिक नहीं है कि क्या उसके पास हमलावर को गंभीर और प्राणघातक चोट पहुँचाने का मौका हो या नहीं, यह देखने के लिए कि क्या अभियुक्त के पास निजी प्रतिरक्षा का अधिकार है या नहीं, सम्पूर्ण घटना के

सावधानीपूर्वक जाँच की जानी चाहिए और उसको उसकी उचित स्थिति में देखा जाना चाहिए। धारा 97 निजी प्रतिरक्षा के अधिकार के विषय वस्तु से संबंधित है। (1) निजी प्रतिरक्षा का अधिकार शरीर और संपत्ति को शामिल करता है जिस व्यक्ति ने उक्त अधिकार का प्रयोग करने वाले व्यक्ति का निकाय या संपत्ति शामिल है (2) किसी अन्य व्यक्ति के शरीर और किसी भी अपराध के मामले में अधिकार का प्रयोग किया जा सकता है। उक्त अधिकार ऐसे मामलों में भी प्रयोग किये जा सकते है जिसमें शरीर के विरूद्ध कोई अपराध, एवं चोरी डकैती, रिष्टी, आपराधिक अतिचार, और ऐसे अपराधो के प्रयास व संपत्ति के संबंध में है। धारा 99 निजी प्रतिरक्षा के अधिकार की सीमाओं को निर्धारित करती है। धारा 96 और 98 कुछ अपराधों और कृत्यों के विरूद्ध निजी बचाव का अधिकार देती है। धारा 96 से 98 और 100 से 106 के तहत दिया गया अधिकार धारा 99 द्वारा नियंत्रित किया जाता है। निजी प्रतिरक्षा का अधिकार जो इस हद तक था जिससे स्वैच्छिक मृत्यु कारित हो जाए, यह दावा करने के लिए अभियुक्त को यह दिखाना होगा कि ऐसी परिस्थितियां है जिससे उचित आशंका उत्पन्न हो रही थी कि मृत्यु या गंभीर चोट लगी होगी। अभियुक्त पर यह दिखाने का भार है कि उसे निजी प्रतिरक्षा के अधिकार की सीमा मृत्यु कारित करने तक की थी। आई. पी. सी. की धारा 100 और 101 निजी प्रतिरक्षा के अधिकार की सीमा और विस्तार को परिभाषित करती है।

13. आई. पी. सी. की धारा 102 और 105 क्रमशः शरीर और संपत्ति की निजी प्रतिरक्षा के अधिकार के प्रारंभ और निरंतरता से संबंधित हैं। अधिकार तब शुरू हो जाता है, जैसे ही किसी ऐसे प्रयास, या धमकी, या अपराध करने से शरीर को खतरे की उचित आशंका उत्पन्न होती है, हालांकि अपराध असल में नहीं किया हो सकता है, लेकिन तब तक नहीं जब तक कि यह उचित आशंका उत्पन्न नहीं हो। अधिकार तब तक निरंतर रहता है जब तक शरीर के लिए खतरे की उचित आशंका बनी रहती है। जय देव बनाम पंजाब राज्य ए. आई. आर. (1963) एस. सी. 612 में यह अवलोकन किया गया है कि जैसे ही उचित आशंका का कारण गायब हो जाता है या खतरा या तो नष्ट कर दिया जाता है या उसका मार्ग परिवर्तित कर दिया जाता है तो निजी प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग करने का कोई अवसर नहीं हो सकता है।

14. यह देखने के लिए कि निजी प्रतिरक्षा का अधिकार उपलब्ध था या नहीं, अभियुक्त को आई चोटे उसकी सुरक्षा को खतरा होने की निकटता, अभियुक्त द्वारा कारित की गई चोट तथा उन परिस्थितियों को कि क्या अभियुक्त के पास लगे अधिकारियों से मदद लेने का समय था या नहीं यह सभी सुसंगत तथ्यों को देखना होगा। यदि घर भागना, तबली लाना और मृतक पर हमला करना निश्चित रूप से कोई बात नहीं है। इन कृत्यों पर हत्या करने और मामले को निजी बचाव के दायरे से बाहर

निकालने की साजिश करने की मुहर लगी हुई है। इसी तरह का विचार इस न्यायालय द्वारा बीरन सिंह बनाम बिहार राज्य, ए. आई. आर. (1975) एस. सी. 87 में व्यक्त किया गया था। और हाल ही में सेकर उर्फ राजा शेखरन बनाम राज्य का प्रतिनिधित्व पुलिस निरीक्षक, तमिलनाडु, (2002) 7 सुप्रीम 124 ने किया। इसलिए, उच्च न्यायालय ने निजी रक्षा के अधिकार के प्रयोग से संबंधित याचिका को सही तौर पर खारिज कर दिया।

15. सजा के सवाल पर आते हुए हम पाते हैं कि धारा 304 भाग II के तहत दंडनीय अपराध के लिए 8 साल की सजा दी गई है। घटना वर्ष 1990 की है। इस तथ्य और जिस पृष्ठभूमि में घटना घटी थी, उसे ध्यान में रखते हुए 6 साल की हिरासत की सजा न्याय के उद्देश्य को पूरा करेगी।

16. जहाँ तक अपीलार्थी सं. 3 संबंधित है, दोषसिद्धि धारा 323/149 के संबंध में है ओर सजा 6 महीने की है। अभिलेख से यह जाहिर है कि वह पूर्व में ही 5 महिने की अभिरक्षा भुगत चुका है, इसे ध्यान में रखते हुए सजा को घटाकर भुगती हुई सजा तक ही किया जाता है।

17. उपरोक्त सीमा तक अपील स्वीकार की जाती है।

[यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक, न्यायिक अधिकारी रीतिका कपूर (आर. जे. एस.) द्वारा किया गया है।]

अस्वीकरण : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।